



---

मनोविज्ञान: एक दार्शनिक चिन्तन

डॉ० राजपाल कौशिक:

सहाचार्यः, संस्कृतम्,

राजकीय महाविद्यालयः, इसराना

प्रस्तावना :

भारतीय चिन्तन परम्परा एक महान्, समृद्ध तथा चिरन्तन अर्थात् सनातन परम्परा है जिसमें जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं जिस पर चिन्तन—मनन—मन्थन न किया गया हो और जिज्ञासाओं या आशंकाओं का स्थायी और सरल समाधान न बताया गया हो। इस चिन्तन परम्परा में यदि हम दार्शनिक चिन्तन की बात करें तो तीन प्रकार का मुख्यतया यह पाया जाता है अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। इन तीनों में भी अधिक आध्यात्मिक प्रकृति पर विचार का रहा है। इस आध्यात्मिक परम्परा में वेद, उपनिषद्, स्मृतिग्रन्थ और लौकिक संस्कृत साहित्य के रामायण, योगवाशिष्ठ, गीता, पञ्चतन्त्र आदि सम्मिलित हैं। सभी चिन्तनों का, सभी विधाओं का, सभी दर्शनों का उद्देश्य एक ही है और वह है बन्धनों से मुक्ति। इसीलिए विष्णुपुराण में यह वाक्य आता है कि —

तत्कर्म यन्न बन्धाय, सा विद्या या विमुक्तये।

आयासायापरं कर्म, विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥ विष्णुपुराणः 1/19/41

अर्थात् कर्म वही है जो बंधन में न बांधे और विद्या वही है जो मुक्त करे। अन्य सभी कर्म तो निरर्थक ही हैं और सब अन्य विद्या भी मात्र शिल्प निपुणता है। यहाँ पुनः उद्धृत किया जाता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा में जीवन के बंधन और मुक्ति के अध्ययन में शरीर, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा का विशेष महत्त्व है। इस शोध—पत्र में मन के विज्ञान को दार्शनिक दृष्टिकोण से समझना और बताना मुख्य रूप से अपेक्षित है। ऋग्वेद हो या अन्य वेद हो अथवा अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ हो सभी ने मन के स्वरूप, वृत्ति, नियन्त्रण की बात की है।

सन्दर्भित विषय की अन्वेषणा में यहाँ शुक्ल यजुर्वेद के शिवसंकल्प सूक्त, कठोपनिषद्, रामायण, योगवाशिष्ठ, श्रीमद्भगवद्गीता, पञ्चतन्त्र आदि महनीय ग्रन्थों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन अपेक्षित है। मनोविज्ञान का अर्थ है मन की क्रियाशीलता का क्रमबद्ध या विशेष अध्ययन अर्थात् यह कब कब, किस प्रकार से विभिन्न स्थितियों में कार्य करता है अर्थात् भय की स्थिति में कैसे और हर्ष की स्थिति में कैसे आदि।



शुक्लयजुर्वेदीय दृष्टिकोणः

मन के स्वरूप विवेचन पर सर्वप्रथम शुक्ल यजुर्वेद में वर्णित मनोविज्ञान की ओर ध्यान आकृष्ट है जहाँ कहा गया है कि

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुं सुप्तस्य तथैवेति ।

दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनःशिवसङ्कल्पमस्तु ॥ 34 / 1

अर्थात् यह जो मेरा मन जागते हुए दूर-दूर तक भागता है और उसी प्रकार सोते हुए भी वैसे ही दूर तक चला जाता है एवं जो प्रकाशमान, दैदीप्यमान ज्योतिषों में एक अत्यधिक प्रकाशित होने वाला एक मात्र ज्योति अर्थात् प्रकाश है अथवा इन्द्रियों का जो स्वामी है, ऐसा वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला बने या स्थिर होवे। यहाँ सूर्य आदि ग्रहों से भी तेज, प्रकाशमान, गतिमान् मन को माना गया है। महाभारत में भी जब यक्ष द्वारा सबसे अधिक वेगवान् के विषय में युधिष्ठिर से पूछा जाता है तो वे भी मन को ही सर्वाधिक वेगवान् कहते हैं। यहाँ आगे तीसरे मन्त्र में यह भी कहा गया है कि यह मन ही विशेष ज्ञान प्रदान करने वाला, स्मृति और धैर्यस्वरूप तथा मनुष्यों के अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से नाशरहित प्रकाशरूप है जिसके बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता, ऐसा मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो। मन्त्र इस प्रकार है –

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च, यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।

यस्मान्ऽऋते किंचन कर्म क्रियते, तन्मे मनःशिवसंकल्पमस्तु ॥

शुक्लयजुर्वेद 34 / 3

कठोपनिषद् का कथन

वेदों के सारभूत उपनिषदों में से कठोपनिषद् में मन के स्वरूप चिन्तन के विषय में कहा गया है कि –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनःप्रग्रहमेव च ॥ अध्याय 1, वल्ली 3, मंत्र 3



अर्थात् हे मनुष्य, जीवात्मा को रथ का स्वामी, रथ को धारण करने वाला रथी समझो और स्वयं शरीर रथ है। ऐसे ही बुद्धि सारथि है और मन इस बुद्धि के हाथों में लगाम है। अग्रिम ही मन्त्र में इन्द्रियों के विषय में भी कहा गया है कि –

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ वहीं 1/3/4

अर्थात् शरीरस्थ इन्द्रियाँ इस शरीर रूपी रथ को खींचने वाले अश्व हैं और विषय विचरण मार्ग हैं, इस प्रकार मनीषियों का कहना है कि इन्द्रियों तथा मन से युक्त आत्मा इस शरीररूप रथ का भोग करने वाला है।

इस प्रकार इस वैदिक विवेचना के पश्चात् क्रम प्राप्त है आदिकवि वाल्मीकि के आदिकाव्य रामायण का जिसके युद्धकाण्ड के सप्तदश सर्ग में जब विभीषण श्रीराम के पास सहायता का प्रस्ताव लेकर आता है तो सुग्रीव आदि सभी के द्वारा उसे आश्रय न देने की कहने पर ज्ञानपुंज हनुमान् अपना मत प्रकट करते हुए मनोवृत्ति का वर्णन करता है –

रामायण में हनुमान् का मत :

हनुमान्, विभीषण के मनोविज्ञान को अर्थात् मन में स्थित भावों के बल पर उन्हें श्रीराम को अपने आश्रय में लेने की बात कहते हैं –

न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता ।

प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ युद्धकाण्ड का 17/62

अर्थात् सामने वाला यदि स्पष्ट, बिना किसी लाग-लपेट से और प्रसन्न मुख से बात कर रहा है तो उसके मनोभाव को सरलता से समझा जा सकता है और अग्रिम श्लोक में कहता है कि –

अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।

न चास्य दुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ वही 28/63

आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितम् ।

बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥ वही 17/64



अर्थात् मैल या दोषयुक्त अथवा कपटी पुरुष कभी भी शंकारहित एवं स्वस्थचित्त या मन वाला होकर सामने नहीं आ सकता और इस विभीषण की वाणी भी दोषयुक्त नहीं है अतः इस पर संदेह नहीं करना चाहिए। इसके पश्चात् हनुमान् पुनः कहते हैं कि कोई अपने आकार को कितना ही छिपा ले परन्तु उसका अन्तर्भाव छिप नहीं सकता एवं बाहर का भाव उसके आन्तरिक भाव को प्रकट कर ही देता है। कहने का भाव कोई भी कितना चतुर हो, वह अपने मनोभाव को छिपा नहीं सकता, वे चाहे मुख मुद्रा के रूप में बाहर आँ या वचनों के माध्यम से या किसी अन्य प्रकार से।

योगवाशिष्ठ में प्राप्त विवरण :

रामायण के अतिरिक्त, आदिकवि वाल्मीकि का एक और महाग्रन्थ माना जाता है जो आकार में रामायण से भी बड़ा है जिसमें 32000 श्लोक हैं और वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, निर्वाण आदि छः प्रकरण प्राप्त होते हैं। यह ग्रन्थ है योगवाशिष्ठ, जिसमें वशिष्ठ ऋषि, श्रीराम के मन की आशंकाओं का क्रमशः समाधान करते हैं और जीवन के विभिन्न तत्त्वों का विवेचन करते हैं। योगवाशिष्ठ के स्थितिप्रकरण के चतुर्थ व पञ्चम सर्ग में वशिष्ठ ऋषि, श्रीराम की जिज्ञासुओं को शांत करता हुआ कहता है कि—

बहुनाऽत्र किमुक्तेन मनः कर्मद्रुमाङ्कुरः।

तस्मिंश्छिन्ने जगच्छाखी छिन्नः कर्मतनुर्भवेत् ॥ 4/4

अर्थात् हे श्रीराम ! संसार सागर की विभिन्न श्रेणियों की प्राप्ति और विनाश के सभी स्वरूपों के विषय में साररूप में यह कहना ही पर्याप्त है कि मन ही कर्मरूपी वृक्ष का अङ्कुर है। मन का नाश होने पर अर्थात् सभी प्रकार के नियन्त्रण होने पर यह संसारवृक्ष नष्ट हो जाता है और कर्मबन्धन से मुक्ति मिल जाती है। आगे मन को ही सब कुछ बताते हुए जगत्-जाल के विषय में कहते हैं —

मनःसर्वमिदं राम ! तस्मिन्नन्तश्चिकित्सते।

चिकित्सतो वै सकलो जगज्जालमयो भवेत् ॥ 4/5

अर्थात् हे श्रीराम ! यह सम्पूर्ण जगत् मन ही है। मन की चिकित्सा अर्थात् चञ्चल मन का समाधान हो जाने पर इस जगज्जालरूपी रोग का भी निदान हो जाता है। आगे के एक श्लोक में ऋषि वशिष्ठ मन को पिशाच कह रहे हैं —

दृश्यात्यन्तासम्भवेन ऋते नाऽन्येन हेतुना।

मनःपिशाच प्रशमं याति कल्पशतैरपि ॥ 4/7



अर्थात् मनरूपी पिशाच का शमन सैंकड़ों कल्पों में भी नहीं हो पाता है। इसके प्रशमन के उपायों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आत्मतत्त्व के विचार से ही यह मन मुक्ति को प्राप्त करता है –

तत्स्वचिन्ताप्रसादेन बध्यते मुच्यते पुनः॥ 4/9

आगे दो श्लोकों में ऋषि वशिष्ठ कह रहे हैं कि –

यथा तिलकणे तैलं गुणो गुणिनि वा यथा ।

यथा धर्मिणि वा धर्मस्तथेदं चित्तके जगत्॥ 4/12

रश्मिजालं यथा सूर्ये यथाऽऽलोकस्तु तेजसि ।

यथौष्यं चित्रभानौ च मनसीदं तथा जगत्॥ 4/13

अर्थात् जैसे तिलों में तेल, गुणी में गुण, धर्मी में धर्म, सूर्य में किरणसमूह, तेज में प्रकाश और अग्नि में उष्णता रहती है वैसे ही यह जगत् मन अथवा चित्त में रहता है। इस प्रकार विभिन्न दृष्टान्त देकर वशिष्ठ मुनि, श्रीराम की मन एवं संसार सम्बन्धी जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित मनोवृत्ति :

वाल्मीकि ऋषि के मन एवं जगत् के विषय में चिन्तन के पश्चात् क्रम प्राप्त है महर्षि वेदव्यास जी रचित श्रीमद्भगवद्गीता का, जिसमें श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के बीच संवादों से मनःस्थिति या मनोविज्ञान पर बृहद्-दिग्दर्शन प्राप्त होता है। वस्तुतः श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा महान् एवं अनूपम ग्रन्थ है जो मनश्चिकित्सा करता है। मनुष्य के विभिन्न दुःखकारणों में एक बहुत बड़ा कारण द्वन्द्व होता है अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य का बोध न हो पाना। गीता में एक ओर अर्जुन का मोहग्रस्त होकर कर्तव्यविमुख होना एवं दूसरी ओर श्रीकृष्णरूपी शास्त्र द्वारा उसे कर्तव्य बोध कराना विशेष उल्लेखनीय है। ये दोनों स्थितियाँ मन पर ही निर्भर करती हैं। मोह से ग्रसित होने की स्थिति में प्रथम अध्याय में अर्जुन, अपनी मनःस्थिति के विषय में श्रीकृष्ण को कहता है –

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्॥ गीता, 1/27 (उत्तरार्ध)

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते॥ वही 1/28



अर्थात् एक ओर तो प्रथम अध्याय के ही 23वें श्लोक में अर्जुन कृष्ण को कह रहा है कि इस दुर्बुद्धि दुर्योधन का साथ देने वाले सभी राजाओं को मैं देखूँगा अर्थात् हराऊँगा<sup>1</sup> और दूसरी ओर जैसे ही दोनों सेनाओं के बीच में रथ स्थापित होने पर सामने खड़े अपने पितामह, गुरु, भाईयों, पुत्रों आदि को देखता है तो मन परिवर्तित हुआ और इन दोनों श्लोकों में कहने लगा कि हे कृष्ण! युद्धाभिलाषी इस स्वजनसमुदाय को देखकर मेरे सब अंग शिथिल हुए जा रहे हैं, मुख सूखा जा रहा है और शरीर में कम्पन एवं रोमाञ्च हो रहा है। अगले ही श्लोक में मन की स्थिति द्रष्टव्य है –

गाण्डीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः।। वही, 1/30

अर्थात् मोहग्रसित मेरे हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है, त्वचा जल सी रही है, मेरा मन भ्रमित सा हुआ जा रहा है और खड़ा होने में भी समर्थ नहीं हूँ। अब यह स्थिति अर्जुन को द्वन्द्व में फंसाती है और किंकर्तव्यविमूढ अर्जुन, स्वयं को कायरतारूपी दोष से नष्ट स्वभाव वाला मानता हुआ और कृष्ण के प्रति अपने आपको शिष्यरूप में समर्पित करता हुआ कर्तव्याकर्तव्य के बोध के लिए प्रार्थना करता है।<sup>2</sup> आगे कृष्ण, अर्जुन को इन्द्रियों द्वारा मन के परतन्त्र होने का वर्णन करते हुए कहता है –

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।। वही, 2/60

अर्थात् मन कैसे इन्द्रियों के काबू में आता है, यहाँ यह बताया गया है। मनोविज्ञान समझने के लिए इन इन्द्रियों को भी जानना आवश्यक है, जिससे ये मन पर हावी न हो सके। परवश मन का उपचार बताते हुए कृष्ण, अर्जुन को कहता है कि समत्वयोग को अपनाकर अन्तःकरण से इन्द्रियों पर नियन्त्रण पा सकता है और तब ही वह प्रसन्नता को प्राप्त सब दुःखों का नाश करने में समर्थ है क्योंकि प्रसन्न मन व्यक्ति की ही बुद्धि स्थिर बुद्धि होती है।<sup>3</sup>

षष्ठाध्याय में कृष्ण, अर्जुन को मन के विषय में वैसे ही कह रहे हैं जैसे ऊपर योगवाशिष्ठप्रकरण में वशिष्ठ ऋषि श्रीराम को कह रहे हैं कि यह मन पिशाच है और एक कल्प तो क्या, सैंकड़ों कल्पों में भी शान्त नहीं किया जा सकता –

चञ्चलं हि मनःकृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदृष्करम्।। वही, 6/34



अर्थात् यह मन बड़ा ही चञ्चल और मथ देने वाले स्वभाव से युक्त है, दृढ और बलवान् है। इसलिए उसका वश में करना मैं वायु को रोकने के समान मानता हूँ। इसके बाद भी इसे नियन्त्रण में करने का केवल अभ्यास और वैराग्य ही मार्ग है –

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ वही, 6/35 (उत्तरार्ध)

पञ्चतन्त्र में प्राप्त विवेचन :

श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित मन स्वरूप व नियन्त्रण के उपायों के पश्चात् विष्णुशर्मा द्वारा रचित पञ्चतन्त्र में वर्णित मनोवृत्ति ध्यातव्य है। मित्रभेद प्रकरण में कहा गया है कि –

आकारैरिड्गितैर्गत्या, चेष्ट्या, भाषणेन च।

नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥<sup>4</sup>

अर्थात् सामने वाले के आकार (शरीराकृति) से, इड्गित (इशारे) से, गति (चालढाल), चेष्टा से, बातचीत के ढंग और नेत्र के विकार एवं मुख की भाव-भंगिमा आदि से उसका मनोगत अभिप्राय लक्षित हो जाता है या समझा जा सकता है। अभिप्राय है कि किसी के भी मन में छिपे भावों को, उसके शरीर की बनावट, मुख-मुद्रा अर्थात् वह प्रसन्न है या तनाव में, उसके इशारों, उसकी चाल अर्थात् मन्दगति है या तेजगति है। वह कैसी चेष्टाएँ कर रहा है अर्थात् सीधी-सीधी बात कर रहा है या इधर-उधर ताँक-झाँक रहा है, बातों में सीधापन है या घूमाफिराकर बात कर रहा है। नेत्रों में सरल भाव प्रतीत होता है या आँखें घूमा-फिरा रहा है और मुख पर किस प्रकार का विकार है, जाना जा सकता है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त सभी दार्शनिक चिन्तनों का यदि निष्कर्ष देखें तो मन वह ज्योति है जिससे प्रकृति के सभी तत्त्व प्रकाशित होते हैं और यह सभी इन्द्रियों को नियन्त्रण करने के लिए लगाम का काम करता है। वशिष्ठ ऋषि ने योग वशिष्ठ में उचित ही कहा है कि –

मनः सर्वमिदं राम ! तस्मिन्नन्तश्चिकित्सते।

चिकित्सतो वै सकलो जगज्जालमयो भवेत् ॥

यदि इसका बाह्य सांसारिक अथवा लौकिक रूप देखना है तो विष्णुशर्मा के पञ्चतन्त्र में स्पष्ट रूप से ही उपरोक्त व्याख्या में कहा गया है कि किसी की मनोवृत्ति को उसके आकार, इशारे, गति, चेष्टाएँ, बोलचाल के ढंग, नेत्र और मुख की भाव भंगिमाओं से देखा जा सकता है।



---

संदर्भ बिन्दु

- 1 योत्स्यमानानवेक्षेऽहं, य एतेऽत्र समागताः ।  
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे, प्रियचिकीर्षवः ॥ गीता, 1/23
- 2 कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः,  
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।  
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे,  
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ गीता, 2/7
- 3 प्रसादे सर्वदुःखानां, हानिरस्योपजायते ।  
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ गीता, 2/65
- 4 मित्रभेदः, श्लोक 45, पृष्ठ 41, पञ्चतन्त्रम्, प्रो० बालशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी  
संदर्भ ग्रन्थ सूची

- 1 यजुर्वेद, महर्षि दयानन्द, आर्य प्रकाशन, 814, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-110006 (भारत)
- 2 कठोपनिषद्; गीता प्रैस, गोरखपुर
- 3 श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीता प्रैस, गोरखपुर
- 4 योगवाशिष्ठः, द्वितीयो भागः, तारा बुक एजेंसी, वाराणसी
- 5 श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रैस, गोरखपुर
- 6 पञ्चतन्त्रम्, प्रो० बालशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी-11
- 7 विष्णुपुराण; गीता प्रैस, गोरखपुर